

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 6 अध्याय 1: अजामिल की कथा

13 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



एक पतित मनुष्य की अन्तिम श्वास पर, केवल अपने प्रिय पुत्र को पुकारने के लिए कहा गया एक दिव्य नाम, भगवान् के तेजस्वी चतुर्भुज पार्षदों को उसके पास दौड़ा लाता है। षष्ठ स्कन्ध का आरम्भ भगवन्नाम में छिपी उस अपार करुणा से होता है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विङ्गम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। इस अध्याय के साथ हम षष्ठ स्कन्ध का आरम्भ करते हैं, जो मुख्यतः एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न से जुड़ा है: अपने ही पापों के भार से दबा हुआ जीव किस प्रकार दुःख से मुक्त होकर पुनः भगवान् की ओर लौट सकता है? पञ्चम स्कन्ध का समापन नरक-लोकों तथा अधर्मियों की प्रतीक्षा करती

यातनाओं के सजीव वर्णन से हुआ था। उन्हें सुनकर राजा परीक्षित करुणामय हृदय से अपने गुरु से पूछते हैं: क्या इससे बचने का कोई उपाय है? श्रीशुकदेव पहले प्रायश्चित्त और आत्मसंयम के सुविख्यात उपाय बताते हैं, किन्तु फिर उससे कहीं महान् बात प्रकट करते हैं — कि भगवान् की भक्ति, और सबसे बढ़कर उनके पावन नाम का कीर्तन, किसी भी कर्मकाण्डी प्रायश्चित्त से अधिक पूर्ण रूप से शुद्ध करता है। इसे सिद्ध करने के लिए वे समस्त भागवत की सर्वाधिक प्रिय कथाओं में से एक सुनाते हैं: अजामिल की कथा — वह पतित ब्राह्मण जिसने मृत्यु के क्षण में “नारायण” नाम पुकारा — और मुक्त हो गया।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 6 (षष्ठ स्कन्ध)
- अध्याय: 1 (प्रथम अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: अजामिल की कथा
- मुख्य वक्ता: श्रीशुकदेव, राजा परीक्षित को उत्तर देते हुए; और कथा के भीतर भगवान् विष्णु के दूत तथा यमराज के दूत — यह सब सूत गोस्वामी द्वारा नैमिषारण्य में एकत्रित ऋषियों को सुनाया गया
- मुख्य श्रोता: गंगा-तट पर उपवास में स्थित राजा परीक्षित; और बाह्य कथा में नैमिषारण्य के ऋषिगण एवं शौनक
- मुख्य स्थल: गंगा का तट जहाँ परीक्षित मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे हैं; कथा के भीतर कान्यकुब्ज नगर (आधुनिक कन्नौज), ब्राह्मण अजामिल के मृत्युशय्या-स्थल पर
- केन्द्रीय विषय: क्या और कैसे जीव पाप तथा नरक से मुक्त हो सकता है — इस प्रकाशन के साथ कि भगवान् के नाम का एक बार उच्चारण, अनजाने में भी, अपार शुद्धिकारक शक्ति रखता है
- मुख्य श्लोक-परिधि: स्कन्ध 6, अध्याय 1, श्लोक 1-68
- मुख्य संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

राजा का प्रश्न: नरक से कैसे बचा जाए?

षष्ठ स्कन्ध वहीं से आरम्भ होता है जहाँ पञ्चम समाप्त हुआ था। श्रीशुकदेव से निवृत्ति-मार्ग (सांसारिक कर्म से विरति, जो मोक्ष की ओर ले जाती है) तथा प्रवृत्ति-मार्ग (सकाम कर्म, जो पुनर्जन्म की ओर ले जाता है) दोनों को सुनकर, और नरक-लोकों का गम्भीर वर्णन सुनकर, राजा परीक्षित अपने गुरु से एक सीधा और करुणामय प्रश्न करते हैं। वे केवल अपने लिए नहीं पूछते; वे समस्त मोहग्रस्त जीवों की ओर से पूछते हैं। “कृपया मुझे बताइए,” वे कहते हैं, “इस संसार में मनुष्य नाना प्रकार की भीषण यातनाओं से भरे नरक से किस प्रकार बच सकता है” (श्लोक 6)।



गंगा-तट पर उपवास में स्थित राजा परीक्षित श्रीशुकदेव से पूछते हैं कि जीव किस प्रकार नरक के भयंकर लोकों से मुक्त हो सकता है (श्लोक 1-6)।

प्रायश्चित्त, आत्मज्ञान और परम शोधक

श्रीशुकदेव क्रमशः उत्तर देते हैं, और उनके उत्तर का यह आरोही क्रम स्वयं में एक शिक्षा है। पहले वे साधारण उपाय बताते हैं: मन, वाणी अथवा शरीर से पाप करने वाले को इसी जीवन में, मृत्यु से पूर्व, शास्त्रोक्त रीति से प्रायश्चित्त करना चाहिए — ठीक वैसे ही जैसे कुशल वैद्य रोग की गम्भीरता को तौलकर, उसके घातक होने से पहले ही तत्काल उपचार करता है (श्लोक 7-8)।

किन्तु परीक्षित एक तीक्ष्ण आपत्ति उठाते हैं। प्रायश्चित्त का क्या लाभ, वे पूछते हैं, यदि मनुष्य पाप करता है, प्रायश्चित्त करता है, और फिर पाप कर बैठता है — क्या ऐसा प्रायश्चित्त हाथी के स्नान के समान व्यर्थ नहीं, जो जल से निकलते ही अपने ऊपर पुनः धूल डाल लेता है (श्लोक 9-10)? श्रीशुकदेव सहमत होते हैं। एक कर्म का प्रतिकार दूसरे कर्म से करना मूलगामी उपचार नहीं, क्योंकि मूल — अज्ञान तथा देहात्मबुद्धि — अछूता रह जाता है। सच्चा प्रायश्चित्त, वे कहते हैं, आत्मज्ञान है; और उससे भी परे हैं तप, ब्रह्मचर्य, इन्द्रिय-संयम, दान, सत्य तथा व्रत, जिनके द्वारा धीरे-धीरे पुरुष महान् पापों को भी वैसे ही भस्म कर देते हैं “जैसे अग्नि बाँस के झुरमुट को” (श्लोक 11-14)।

तब श्रीशुकदेव अपने उत्तर का शिखर प्रकट करते हैं — भगवान् वासुदेव के प्रति अविचल, अनन्य भक्ति रखने वाला कोई विरला भाग्यशाली जीव अपने संचित पापों को जड़ से उखाड़ फेंकता है, ठीक वैसे ही जैसे सूर्य का उदय होते ही कुहरा तितर-बितर हो जाता है।

केचित्केवलया भक्त्या वासुदेवपरायणाः ।

अघं धुन्वन्ति कात्स्न्येन नीहारमिव भास्करः ॥ १५ ॥

kecit kevalayā bhaktyā vāsudeva-parāyaṇāḥ agham dhunvanti kārtsnyena nīhāram iva bhāskaraḥ

अर्थ: कुछ विरले धन्य जीव, जो पूर्णतः भगवान् वासुदेव के परायण हैं, अपने पापों को मूल सहित पूर्णतया नष्ट कर देते हैं — जैसे सूर्य कुहरे को समग्रता से मिटा देता है। (स्कन्ध 6, अध्याय 1, श्लोक 15)

श्रीशुकदेव इसी शिक्षा में दो और चरण जोड़ते हैं। जो कोई भगवान् के किसी सच्चे भक्त की सेवा करता है और उससे सीखता है कि अपना सम्पूर्ण जीवन श्रीकृष्ण के चरणकमलों को कैसे समर्पित किया जाए, वह पूर्णतः शुद्ध हो जाता है — ऐसी शुद्धि जो तप, प्रायश्चित्त अथवा ब्रह्मचर्य अकेले नहीं दे सकते (श्लोक 16)। और ऐसे शुद्ध भक्तों का मार्ग, जो सदाचारी हैं तथा समस्त सद्गुणों से सम्पन्न हैं, इस संसार में सर्वाधिक मंगलकारी मार्ग है: निर्भय, और शास्त्रों द्वारा पूर्णतः प्रमाणित (श्लोक 17)।

कितने ही कर्मकाण्डी प्रायश्चित्त, श्रीशुकदेव आगे कहते हैं, उस व्यक्ति को पूर्णतया शुद्ध नहीं कर सकते जिसने नारायण से मुख मोड़ लिया है, ठीक वैसे ही जैसे सैकड़ों नदियाँ मिलकर भी मदिरा से भरे घड़े को शुद्ध नहीं कर सकतीं (श्लोक 18)। किन्तु जिन्होंने एक बार भी भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों में, उनकी महिमाओं के प्रति अनुराग से, अपना मन लगा दिया है, वे इतने पूर्णतः शुद्ध हो जाते हैं कि स्वप्न में भी यम अथवा उनके पाशधारी दूतों को नहीं देखते।

सकृन्मनः कृष्णपदारविन्दयो-

निवेशितं तद्गुणरागि यैरिह ।

न ते यमं पाशभृतश्च तद्भटान्

स्वप्नेऽपि पश्यन्ति हि चीर्णनिष्कृताः ॥ १९ ॥

sakṛn manaḥ kṛṣṇa-padāravindayor niveśitaṁ tad-guṇa-rāgi yair iha na te yamaṁ pāśa-bhṛtaś ca tad-bhaṭān svapne 'pi paśyanti hi cīrṇa-niṣkṛtāḥ

अर्थ: जिन्होंने इस लोक में एक बार भी भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों में अपना मन लगाया है — उनकी महिमाओं में अनुरक्त होकर — वे स्वप्न में भी यम तथा उनके पाशधारी दूतों को नहीं देखते, क्योंकि उन्होंने समस्त प्रायश्चित्त पहले ही कर लिया है। (स्कन्ध 6, अध्याय 1, श्लोक 19)



श्रीशुकदेव सिखाते हैं कि भगवान् के प्रति शुद्ध भक्ति जीवन भर के संचित पापों को वैसे ही सहज मिटा देती है जैसे उदित होता सूर्य प्रातःकालीन कुहरे को (श्लोक 15-19)।

एक प्राचीन आख्यान: अजामेल नामक ब्राह्मण

इस सत्य को सजीव बनाने के लिए श्रीशुकदेव भगवान् विष्णु के दूतों तथा यमराज के दूतों के बीच हुए एक प्राचीन संवाद का आख्यान सुनाते हैं (श्लोक 20)। कान्यकुब्ज नगर में, आधुनिक कन्नौज में, कभी अजामिल नामक एक ब्राह्मण रहता था। श्रेष्ठ कुल में जन्मा और मूलतः विद्वान् तथा सदाचारी, वह एक निम्न वर्ग की दासी के प्रति आसक्ति से पतित हो गया, और उस संग से दूषित होकर उसने ब्राह्मण के योग्य समस्त सदाचार को त्याग दिया। उस स्त्री तथा उससे उत्पन्न सन्तानों के भरण-पोषण के लिए उसने धर्म को पूर्णतः त्यागकर लूट, जुआ, छल तथा चोरी से जीविका चलाई (श्लोक 21-22)।

इसी पतित अवस्था में उसके जीवन के अठ्ठासी वर्ष बीत गए। अजामिल के उस स्त्री से दस पुत्र हुए, और सबसे छोटे को, जो अभी छोटा बालक था, उसने — मानो विधाता की मौन व्यवस्था से — नारायण नाम दिया था। वृद्ध उस मधुर तुतलाते शिशु पर मुग्ध था, उसकी हर चेष्टा में आनन्दित होता, स्वयं खाते समय उसे खिलाता और स्वयं जल पीते समय उसे जल पिलाता, स्नेह से इतना बँधा कि उसे अपनी मृत्यु के निकट आते समय का बोध ही न रहा (श्लोक 23-26)।



वृद्धावस्था में पतित ब्राह्मण अजामिल अपने सबसे छोटे बालक पर, जिसका नाम नारायण है, मुग्ध रहता है, इस बात से अनजान कि मृत्यु निकट आ रही है (श्लोक 23-26)।

मृत्यु के क्षण में पुकारा गया नाम

तभी मृत्यु आ पहुँची। असहाय पड़े, अपने छोटे पुत्र पर मन टिकाए, अजामिल ने सहसा तीन भयंकर आकृतियाँ देखीं — टेढ़े मुख और खड़े रोंगटे वाली, हाथों में पाश लिए उसे खींच ले जाने आई। भयभीत होकर उसने वही किया जो उसका डरा हुआ हृदय जानता था: उसने ऊँचे और खिंचे हुए स्वर में अपने बालक को पुकारा — “नारायण!” नाम चिल्लाकर।

स पाशहस्तांस्त्रीन्दृष्ट्वा पुरुषानतिदारुणान् ।
वक्रतुण्डानूर्ध्वरोम्ण आत्मानं नेतुमागतान् ॥ २८ ॥
दूरे क्रीडनकासक्तं पुत्रं नारायणाह्वयम् ।
प्लावितेन स्वरेणोच्चैराजुहावाकुलेन्द्रियः ॥ २९ ॥

sa pāśa-hastāṁs trīn dṛṣṭvā puruṣān ati-dāruṇān vakra-tuṇḍān ūrdhva-romṇa ātmānaṁ netum āgatān dūre krīḍanakāśaktaṁ putraṁ nārāyaṇāhvayam plāvītena svareṇoccair ājuhāvākulendriyaḥ

अर्थ: हाथों में पाश लिए, टेढ़े मुख और खड़े रोंगटे वाले तीन अत्यन्त भयंकर पुरुषों को उसे ले जाने आया देखकर, भयातुर अजामिल ने ऊँचे, खिंचे हुए स्वर में अपने पुत्र को पुकारा, जिसका नाम नारायण था और जो कुछ दूरी पर खेल में लगा था। (स्कन्ध 6, अध्याय 1, श्लोक 28-29)

उसका अभिप्राय केवल अपने बालक को पुकारना था। किन्तु जो नाम उसने उच्चारित किया वह स्वयं भगवान् का नाम था — और भगवान् का नाम, चाहे जैसे भी लिया जाए, कभी व्यर्थ नहीं जाता। जिस क्षण “नारायण” की ध्वनि उस मरणासन्न मनुष्य के होठों से निकली, भगवान् नारायण के पार्षद, अपने स्वामी का नाम कीर्तित होते सुनकर, तुरन्त वहाँ आ पहुँचे।

निशम्य म्रियमाणस्य मुखतो हरिकीर्तनम् ।
भर्तुर्नाम महाराज पार्षदाः सहसापतन् ॥ ३० ॥

niśamya mriyamāṇasya mukhato hari-kīrtanam bhartur nāma mahārāja pārṣadāḥ sahasāpatan

अर्थ: हे महाराज, मरणासन्न मनुष्य के मुख से श्रीहरि के नाम का — अपने ही स्वामी के नाम का — कीर्तन सुनकर भगवान् के पार्षद सहसा उस स्थान पर उतर आए। (स्कन्ध 6, अध्याय 1, श्लोक 30)

केवल पुत्र को पुकारने के लिए कहा गया नाम इतनी शक्ति क्यों रखता है? भागवत के आचार्य इसे अज्ञात-सुकृति कहते हैं — बिना किसी सचेत अभिप्राय के प्राप्त पुण्य-फल। साधारण शब्द के विपरीत, भगवन्नाम कभी भगवान् से पृथक् नहीं होता; उसकी शुद्धिकारक शक्ति वक्ता की समझ की प्रतीक्षा नहीं करती, ठीक वैसे ही जैसे अग्नि यह जाने बिना भी जला देती है कि उसे छूने वाला हाथ अग्नि को पहचानता है या नहीं। यही कारण है कि अजामिल की अनजानी पुकार भगवान् विष्णु के पार्षदों को बुला सकी, और श्रीशुकदेव इसे औपचारिकता नहीं अपितु वास्तविक प्रायश्चित्त मानते हैं — नाम अपने ही स्वभाव से कार्य करता है, चाहे वह जहाँ भी और जैसे भी उच्चारित हो (श्लोक 25-26, 30)।

भगवान् विष्णु के दूतों का हस्तक्षेप

भगवान् विष्णु के दूतों ने देखा कि यमराज के दूत अजामिल की आत्मा को उसके हृदय के भीतर से बलपूर्वक खींच रहे हैं, और उन्होंने उन्हें बलपूर्वक रोक दिया (श्लोक 31)। विस्मित होकर यमराज के दूतों ने पूछा कि ये कौन हैं जो यम की सत्ता में बाधा डालने का साहस कर रहे हैं। उन्होंने विस्मय से जो देखा उसका वर्णन किया: कमल-दल के समान नेत्रों वाले, पीताम्बर धारण किए, मुकुट, कुण्डल तथा कमल-मालाओं से

सुशोभित, पूर्ण यौवन में, चार सुन्दर भुजाओं वाले जिनमें धनुष, तरकश, तलवार, गदा, शंख, चक्र तथा कमल शोभायमान थे — ऐसे तेजस्वी पुरुष जिनकी दीप्ति अन्धकार को दूर कर हर अन्य ज्योति को मन्द कर रही थी (श्लोक 32-36)।



भगवान् विष्णु के तेजस्वी चतुर्भुज दूत यमराज के दूतों को रोक देते हैं, जो अजामिल की आत्मा की रक्षा हेतु आए इन दीप्तिमान् पुरुषों को विस्मय से देखते हैं (श्लोक 31-36)।

धर्म क्या है? एक प्रश्न जो पासा पलट देता है

चुनौती सुनकर भगवान् वासुदेव के दूत मन्द मुस्कान से हँसे और मेघ-गर्जन के समान गम्भीर स्वर में उत्तर दिया (श्लोक 37)। यदि तुम सचमुच धर्म के अधिष्ठाता यम के दूत हो, उन्होंने कहा, तो बताओ: धर्म का यथार्थ स्वरूप क्या है, और उसका निर्णय कैसे होता है? दण्ड किसे और कैसे दिया जाता है? क्या समस्त कर्म करने वाले दण्ड के पात्र हैं, अथवा केवल कुछ (श्लोक 38-39)?

यमराज के दूतों ने विचारपूर्ण और गम्भीर उत्तर दिया। धर्म वही है, उन्होंने कहा, जो वेद विहित करता है, और अधर्म वह जो वेद निषिद्ध करता है; और वेद स्वयं साक्षात् भगवान् नारायण ही हैं, स्वयंप्रकट। यह नारायण ही हैं जिनसे तीनों गुणों से बने समस्त प्राणी अपने विशिष्ट गुणों, नामों, कर्मों तथा रूपों सहित अस्तित्व में आते हैं (श्लोक 40-41)। सूर्य, अग्नि, आकाश, वायु, इन्द्रियाँ, चन्द्रमा, सन्ध्याएँ, दिन-रात, दिशाएँ, जल, पृथ्वी, काल तथा स्वयं धर्म — ये सब प्रत्येक देहधारी जीव के कर्मों के साक्षी हैं। इनकी साक्षी से अधर्म सिद्ध होता है, और प्रत्येक कर्ता, बिना अपवाद, अपने कर्मों का फल भोगने का पात्र है, क्योंकि कोई देहधारी क्षण भर भी कर्म से विरत नहीं रह सकता (श्लोक 42-44)।



यमराज के दूत धर्म, कर्म तथा प्रत्येक जीव के कर्मों के साक्षियों का विवेचन करते हैं, यह समझाते हुए कि सूक्ष्म शरीर किस प्रकार जीव को एक जन्म से दूसरे में ले जाता है (श्लोक 40-55)।

तत्पश्चात् यमराज के दूतों ने जीव के पुनर्जन्म पर एक गहन शिक्षा दी: कैसे वर्तमान जीवन भूत और भावी जन्मों के पुण्य-पाप को उतनी ही निश्चितता से प्रकट करता है जितनी वर्तमान ऋतु बीती और आने वाली ऋतुओं का स्वरूप; कैसे सर्वज्ञ यम प्रयात जीव की पूर्व अवस्था तथा भावी गति को जान लेते हैं; और कैसे अज्ञानी जीव, स्वप्न देखने वाले के समान जो केवल स्वप्न-शरीर को ही अपना मानता है, अपने वर्तमान मनो-शारीरिक रूप से ही तादात्म्य कर बैठता है, बार-बार अपने ही कर्म के कोश में लिपटा हुआ। यह पतन, उन्होंने निष्कर्ष दिया, जीव के प्रकृति से संग के कारण है — और यह “भगवान् की भक्ति से शीघ्र ही समाप्त हो जाता है, और किसी अन्य साधन से नहीं” (श्लोक 45-55)।

एक बर्बाद जीवन की कथा

अजामिल पर अपने अधिकार को सिद्ध करने के लिए यमराज के दूतों ने उसका इतिहास सुनाया। यही मनुष्य, उन्होंने कहा, कभी सचमुच विद्वान् और सज्जन था — सौम्यता का आगार, संयमी, कोमल, सत्यवादी और पवित्र; अग्निहोत्री, गुरु तथा वृद्धों का सेवक, समस्त प्राणियों का मित्र, अहंकार से रहित (श्लोक 56-57)। एक दिन, पिता की आज्ञा से, वह वन में फल, फूल, समिधा तथा कुश-घास लेने गया। लौटते समय मार्ग में उसने एक निर्लज्ज, मद्यपान से उन्मत्त निम्नवर्गीय पुरुष को उसी वर्ग की एक स्त्री के साथ खुलेआम विलास करते देखा। इस दृश्य ने अजामिल के हृदय में अनियन्त्रित काम-वासना जगा दी। यद्यपि उसने बुद्धि और विद्या से अपने मन को स्थिर करने का प्रयास किया, वह न कर सका; काम से ग्रस्त, केवल उसी का चिन्तन करता, वह अपने समस्त कर्तव्यों से विचलित हो गया (श्लोक 58-63)।



कभी अग्निहोत्र का निष्ठान् उपासक रहा अजामिल काम से पराजित होकर अपने धर्ममय जीवन तथा अपनी श्रेष्ठ पत्नी को त्याग देता है, और वर्षों की अधोगति में डूब जाता है
(श्लोक 56-66)।

उसने उस स्त्री को प्रसन्न करने के लिए अपने पिता की समस्त सम्पत्ति उड़ा दी, अपनी धर्मपत्नी तथा सदाचारिणी स्त्री को त्याग दिया, और तत्पश्चात् उचित-अनुचित उपायों से उस स्त्री तथा उसकी अनेक सन्तानों का भरण-पोषण किया। क्योंकि उसने शास्त्रों का उल्लंघन किया था, बहुत काल तक अपवित्र अवस्था में रहा था, और कोई प्रायश्चित्त नहीं किया था, यमराज के दूतों ने घोषित किया कि इस पापी को अपने स्वामी के पास ले जाने में वे न्यायसंगत हैं, जहाँ वह दण्ड से शुद्ध होगा (श्लोक 64-68)।

इसी दावे के गूँजते हुए षष्ठ स्कन्ध का प्रथम अध्याय समाप्त होता है — दोनों दूत-दल अब एक मरणासन्न मनुष्य के ऊपर आमने-सामने खड़े हैं, और यह महान् प्रश्न कि क्या अनजाने में उच्चारित एक नाम एक जीवन भर के पाप को तौल में पछाड़ सकता है, अगले अध्याय तक अनिर्णीत लटका रह जाता है।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. केवल कर्मकाण्डी प्रायश्चित्त पाप को मूल से नहीं उखाड़ सकता। क्योंकि कर्म से किया गया प्रायश्चित्त अज्ञान को अछूता छोड़ देता है, मनुष्य पाप और प्रायश्चित्त के अन्तहीन चक्र में पड़ा रह सकता है, जैसे हाथी स्नान करके पुनः धूल डाल ले। सच्ची मुक्ति के लिए ज्ञान और अन्ततः भक्ति आवश्यक है (श्लोक 9-14)।
2. शुद्ध भक्ति सर्वाधिक पूर्ण शोधक है। भगवान् वासुदेव की भक्ति पाप को मूल सहित नष्ट कर देती है, “जैसे सूर्य कुहरे को”, वह करती है जो सैकड़ों नदियों का कर्मकाण्ड भी नहीं कर सकता (श्लोक 15-18)।
3. भगवन्नाम वक्ता के अभिप्राय से परे शक्ति रखता है। अजामिल ने केवल अपने पुत्र के अभिप्राय से “नारायण” पुकारा, फिर भी भगवान् के पार्षद तुरन्त आ गए — यह दर्शाता है कि भगवान् का नाम स्वयं में सामर्थ्यवान् है, तब भी जब वह सचेत भक्ति के बिना उच्चारित हो (श्लोक 28-30)।

4. प्रत्येक जीव एक न्यायपूर्ण और साक्षियुक्त विधान के अधीन है। यमदूतों का उत्तर पुष्टि करता है कि यह विश्व आमूलचूल नैतिक है: धर्म वेद में निहित है, जो स्वयं भगवान् हैं, और प्रत्येक कर्म साक्षी-युक्त तथा फलदायी है (श्लोक 40-45)।

5. आसक्ति सदाचारी को भी पतित कर सकती है — और कृपा पतित तक भी पहुँच सकती है। अजामिल का पवित्र जीवन से पतन चेतावनी देता है कि वासना कितनी शीघ्रता से जीव को नष्ट कर सकती है; उसका उद्धार यह आश्वासन देता है कि कोई भी भगवान् के नाम की पहुँच से परे नहीं (श्लोक 56-66)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय की करुणा में कुछ लगभग विस्मयकारी है। अजामिल कोई सन्त नहीं। वह चोर है, छली है, वह पुरुष जिसने एक निष्ठावान् पत्नी को त्याग दिया और अपनी विरासत को अपनी इन्द्रियों पर उड़ा दिया। जब मृत्यु उसके लिए आती है, तब वह भगवान् का स्मरण ही नहीं कर रहा — वह अपने छोटे बालक का चिन्तन कर रहा है। फिर भी, क्योंकि उस बालक का नाम नारायण था, दिव्य नाम की मात्र ध्वनि भगवान् के सेवकों को उसकी रक्षा हेतु बुला लेती है। हम पूछ सकते हैं: क्या यह न्यायसंगत है? किन्तु यह अध्याय हमें यह नहीं सिखा रहा कि भगवान् को छला जा सकता है। यह सिखा रहा है कि भगवान् अपने नाम के माध्यम से स्वयं को कितना विस्मयकारी रूप से सुलभ बना देते हैं। यदि अज्ञान में पुकारा गया नाम इतनी शक्ति रखता है, तो वही नाम कितना कुछ ले जाएगा जब हम उसे जानबूझकर, प्रेम से पुकारें? यह कथा धर्म के मानदण्ड को नहीं गिराती; कर्म पर यमदूतों की दीर्घ शिक्षा अटल खड़ी है। बल्कि यह उस मानदण्ड के पास एक द्वार खोलती है — भगवन्नाम का द्वार — और दर्शाती है कि यह द्वार हममें से सबसे बुरे के लिए भी खुला छोड़ दिया गया है। यही वह आशा है जिससे षष्ठ स्कन्ध आरम्भ होता है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, भगवन्नाम को कम से कम एक बार पूर्ण ध्यान के साथ अपने होठों पर आने दें। आपकी परिस्थिति चाहे जो हो — व्यस्त, विचलित, अथवा पश्चात्ताप के बोझ से दबी — रुकिए, श्वास लीजिए, और धीरे से ऊँचे स्वर में कहिए: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” अजामिल ने नाम लगभग अनजाने में कहा और वह भगवान् के सेवकों तक पहुँच गया; तब कल्पना कीजिए, वह कैसे ग्रहण किया जाता है जब आप उसे प्रयोजनपूर्वक, एक भेंट के रूप में कहते हैं। यह स्मरण आपका छोटा दैनिक अभ्यास बने, ताकि जब आपको सबसे अधिक आवश्यकता हो तब नाम आपकी जिह्वा पर पहले से ही परिचित हो।

उपसंहार

षष्ठ स्कन्ध का प्रथम अध्याय एक सार्वभौमिक चिन्ता का प्रश्न रखता है — जीव अपने ही पापों के परिणामों से कैसे बच सकता है? — और उसका उत्तर ऐसे रूप में देता है जो कोई शुष्क ग्रन्थ कभी नहीं दे सकता, नरक के कगार पर उद्धार पाए एक बर्बाद ब्राह्मण की मर्मस्पर्शी कथा के द्वारा। श्रीशुकदेव अपनी शिक्षा को सावधानी से रचते हैं — साधारण प्रायश्चित्त से आत्मज्ञान तक, और फिर भक्ति के परम शोधक तक — और फिर उस अन्तिम सत्य को अजामिल के रूप में सजीव करते हैं, जिसका मरणकाल में “नारायण” का पुकार विष्णु के दूतों को उसके पास ले आता है। अध्याय दोनों दूत-दलों को आमने-सामने खड़ा छोड़कर समाप्त होता है, परिणाम स्थगित — किन्तु गहरा सन्देश पहले ही स्पष्ट है। भगवान् का नाम मात्र एक शब्द नहीं; वह उनकी साक्षात् उपस्थिति है, सदा निकट, सदा उस पुकारने वाले को उत्तर देने के लिए तत्पर। यही वह श्रद्धा-बीज बने जो हमें आगे के अध्यायों में ले चले।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ एवं आभार

- मुख्य संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), षष्ठ स्कन्ध, प्रथम अध्याय।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद अथवा टीका की प्रतिलिपि नहीं है। किसी प्रकाशक से किसी सम्बद्धता अथवा समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-skandh-6-adhyay-1-ajamil-ki-katha-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट